INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH IN COMMERCE, IT, ENGINEERING AND SOCIAL SCIENCES (IJRCIESS) ISSN: 2349-7793
Vol. 5 No. 1 (2011): January
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal

प्रमुख जलजनित रोगों में संक्रमी यकृत शोथ रोग की स्थिति

Hemlata, Research Scholar, Singhania University, pacheri Bari, jhunjhunu

Dr. Mukesh Kumar Sharma, Research Supervisior, Singhania University, pacheri bari, jhunjhunu

परिचय :

जीवाणु रोगों के कारण माने जाते हैं। प्रत्येक जीवाणु का अपना–अपना एक निश्चित संचयकाल होता है। यह समय कुछ घण्टों से लेकर कुछ महीनों तक का हो सकता है। रोगी के शरीर का रोग बल जीवाणु के संचयकाल को प्रभावित करता है। अर्थात् यदि शरीर का प्रतिरोधक क्षमता उत्तम होती है, तो जीवाणुओं का संचयकाल अल्पतम हो सकता है। अल्प रोगक्षमता होने पर संचयकाल अल्पावधि का हो सकता है। जीवाणु संचयकाल का अभिप्राय आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से यह है कि शरीर में प्रवेश होने के पश्चात् जीवाणु की इतनी संख्या हो जाए कि वह रोग के लक्षण प्रकट कर सके। जीवाणु शरीर में प्रवेश होने के पश्चात् अपनी वृद्धि तीव्रता से आरम्भ करते हैं। जब जीवाणु की शरीर में वृद्धि असंख्या मात्रा में हो जाती है, तभी वे रोग के लक्षण प्रकट करते हैं।

जीवाणु रोगों की उत्पत्ति के निश्चित कारण होते हैं। इसे आधुनिक वैज्ञानिक सिद्ध कर चुके हैं। जीवाणुओं का संवर्द्धन शरीर से अन्यत्र प्रयोगशालाओं में भी जा चुका है तथा सवंर्द्धित जीवाणुओं को स्वस्थ पुरूष अथवा पशुओं में प्रोपित करवाकर जिस रोग के जीवाणु थे, वही रोग उत्पन्न कर प्रामाणिक हो चुका है कि रोगो में

उत्पत्ति में जीवाणु निश्चित रुप से कारण होते है। आधुनिक विज्ञान के रोग वर्गीकरण में जीवाणुजनित व्याधियों को जीवाण्विक रोग कहते हैं। जीवाणु का अभिप्राय अदृश्य एक कोशिकीय जन्तु होना चाहिए, जिसके अन्तर्गत् बैक्टेरिया, विषाणु, कवक तथा सूक्ष्मकर्मी का समावेश होता है। ये सभी रोगों की उत्पत्ति की क्षमता रखते हैं। जीवाणु विशेष अपनी कोशाओं में स्थित रासायनिक विषों के द्वारा रोग उत्पन्न करते हैं।

मनुष्यों में रोग जनन के दो कारण होते हैं अर्थात् रोग जनक कारणों को दो वर्गो में बाँट सकते हैं, प्रथम साधारण, द्वितीय असाधारण/साधारण वर्ग में वे कारण आते हैं, जो किसी क्षेत्र विशेष की समस्त जनंसख्या पर एकसाथ प्रभाव डालते हैं अर्थात् उन कारणों से सज़्यपूर्ण क्षेत्र के सभी प्राणी प्रभावित होते हैं तथा असाधारण वर्ग में वे कारण आते हैं, जो व्यक्ति विशेष को प्रभावित करते हैं। आधुनिक विज्ञान में तीन शब्द एपीडेमिक, एन्डेमिक तथा स्पोराडिक व्याधियों के लिए उपयोग में लिए जाते हैं।

रोगों का वर्गीकरण एक महत्वपूर्ण व जटिल कार्य है। कुछ रोग शरीर के अन्दर होते हैं, वह आन्तरिक रोग कहलाते हैं, परन्तु शरीर का सज़्बन्ध वातावरण से है। अतः इसके रोग बाहिय रोग कहलाते हैं। विश्व में रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान एवं जीवों के बारे में लज्बे समय से अनुसंधान कार्य होते रहे हैं, परन्तु एक निश्चित आधार अभी तक नहीं पाया गया है, जिसके आधार पर वर्गीकरण किया जा सके। विभिन्न विद्वानों ने समय–समय पर अलग–अलग आधार लेकर आवश्यकता अनुसार रोगों का वर्गीकरण किया है। वर्गीकरणों की प्रकृति के आधार पर हम समस्त प्रकार के वर्गीकरणों को दो पद्धतियों में विभाजित कर सकते हैं।

पहला–भारतीय पद्धति आयुर्वेद के अनुसार तथा दूसरा–विदेशी ब्रिटेनिका इनसाइक्योपिडिया पद्धति के अनुसारः

ब्रिटेनिका इनसाइक्लोपिडिया पद्धति के अनुसार हम 11 प्रकार के वर्गीकरणों को सम्मलित कर सकते हैं। ये अलग–अलग आधारों पर निम्न प्रकार से है–

1 धरातलीय शारीरिक प्रणाली के आधार पर 2. शरीर अव्यव के आधार पर 3. शरीर विज्ञान के अनुसार वर्गीकरण 4. रोग कारण सम्बन्धि वर्गीकरण 5. रोग निदान सम्बन्धी वर्गीकरण 6. पंच फैसले के आधार वर्गीकरण 7. जनपादिक के आधार पर वर्गीकरण–इसके अन्तर्गत जे.ई. पार्क का वर्गीकरण तथा अर्न्तराष्ट्रीय वर्गीकरण जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रस्तावित किया गया हैं 8. आंकड़ो के आधार पर वर्गीकरण 9. वितरण के आधार पर वर्गीकरण– यह वर्गीकरण तीन प्रकार में विभाजित होता है– महामारी, स्थानीय, विश्वमारी 10. शारीरकि प्रणालियों के आधार पर वर्गीकरण– इसके अन्तर्गत प्रमुख 6 प्रकार की प्रणालियों का आधार लिया गया है एवं 11. पारिस्थितिक वर्गीकरण–पर्यावरणीय तत्वों के आधार पर यह पारिस्थितिक वर्गीकरण प्रमुख दो प्रकार के वर्गीकरणों को अपने अन्दर सम्मलित करता है। इसमें 'मे' का रोगों का पारिस्थितिकी वर्गीकरण तथा मास्को की इन्स्टीट्यूट ऑफ पोस्ट ग्रेज्युएट मैडिकल ट्रैनिंग सैन्टर आते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (1983) के अनुसार रोगों का वर्गीकरणः

विश्व के विभिन्न भू–भागों में कुछ ऐसे रोग पाए जाते हैं, जो अन्य भू–भागों में नही पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ पीत ज्वर दक्षिण अफ्रीकी देशों में ही होता है तथा संक्रमी यकृत शोथ शीत भूखण्डों में नहीं होता। अतः विश्व स्वास्थ्य संगठन का

विशाल वर्गीकरण है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1983 में रोगों का संशोधित अर्न्तराष्ट्रीय वर्गीकरण प्रस्तुत किया था, जिसमें 150 प्रकार के रोगों संकलित किया। जिन्हें तीन वर्गो ए, एइ, एएन में वर्गीकृत किया। चिकित्सा भूगोल में पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार ए वर्ग ही महत्त्व रखता है। जिसमें से 136 प्रकार के रोगों का अर्न्तराष्ट्रीय वर्गीकरण निम्नलिखित हैः

हैजा, मोतीझरा, मोतीझरा के समतुल्य बुखार एवं जीवाण्विक संक्रमण, ऑव एवं जीवाणु जनित पेचिस, छोटी आँत में सूजन तथा अन्य ऑव सम्बन्धी रोग, वसन प्रणाली का यक्ष्मा, मध्य नाडी संस्थान एवं मस्तिष्क का यक्ष्मा, जोड एवं हड्डियों का क्षय रोग, आन्तीय ग्रन्थि एवं उदरीय आवरण का क्षय रोग, देर से प्रजवित होने वाले अन्य क्षय रोग, प्लेग, प्रार्बुदीय घाव या विषहरियों, एक प्रकार का परजीवी संक्रमण, कुष्ठ रोग, रोहिणी, कूकर खाँसी, जैवाणिक संक्रामक रोग, एक प्रकार की जैवाणविक त्वचीय संक्रामक रोग, जैवाणविक संक्रामक, धनुषटंकार, अन्य जीवाणु वर्ग के रोग, बच्चों का पक्षाघात, पक्षाघात का देर से प्रजव, शीतला या छोटी माता, खसरा, पीत ज्वर, संक्रामक यकृत शोथ, संक्रमी यकृत शोथ, अन्य संक्रांमक रोग, शरीर में चक्ते पड़ने वाला ज्वर, मलेरिया, एक परजीवी संक्रामक रोग, प्रत्यावर्ती ज्वरा या उकाऊ, लक्षण सम्बन्धी उपदंश, शीध्र लक्षण सम्बन्धी उपदंश, केन्द्रीय नाडी संस्थान का उपदंश, अन्य उपदंश, संक्रामक सुजाक, सौमियासिस, जलीय रोग, संक्रामक फाईलेरिया, कृमि रोग, धूत कृमि, अन्य सजी धूत एवं संक्रामक रोग, विद्धदेषी ककट (कैंसर) मुखगुहा तथा ग्रसनी का रोग, विद्धेषी ककट (कैंसर) आमासय का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) आँतों का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) मलाशय का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) स्वर यं. का रोग,

विद्धेषी कक (कैंसर) श्वसन नली या फैफड़े का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) हड्डी का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) त्वचा का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) स्तन का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) सर्वाइक्सटेरिस का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) गर्भाशय मुख का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) सिशन ग्रन्थि का रोग, विद्धेषी कक (कैंसर) अन्य जगहों का रोग, रक्त का कैंसर, अन्य कोशकीय जाल का कैंसर, अवर्गीकृत प्रकार का कैंसर, कंठमाला, थाईराइड ग्रन्थि से अतिस्रवा के कारण जो स्थिति हो, मधुमेह, विटामिन ए एवं अन्य पोषण की कमी के कारण, अन्य आन्तरिक स्राव एवं चयापचयशील रोग, रक्ताल्पता, रक्त के अन्य रोग और रक्त के निर्माता अंग, मनोविकार या पागलपन, अन्य मानसिक रोग, मानसिक रूकावट, मस्तिष्क वरण शोथ, अनेक शरीर तत्त्वों का कडा पड जाना, मिरगी, आँख का उत्तेजक रोग, मोतियाबिन्द, आँख का रोग, मध्यकष प्रदाह, कण अस्थि प्रदाह, नाडी संस्थान के अन्य रोग एवं नाक, कान, गला रोग, ज्वर, वात रोग, उच्चरक्त दाब, रक्ताल्पता हदृय रोग, अन्य प्रकार के हदृय रोग, मस्तिष्क रक्त वाहिनी रोग, रक्त वाहिनियों की बीमारी, शिरीथ अवरोधक रोग, अन्य रोग एवं धमनी में रक्त संचालन अवरोध, तीव्र श्वसन संक्रमण, फलू ज्वर, संक्रामी निमोनिया,अन्य निमोनिया, खाँसी, फेफड़ा संबंधी एवं दमा, टॉनसिल का बड़ा हो जाना, अप्राकृतिक वायुकोषों में वायु का होना एवं फैफड़े का फोडा, श्वसन प्रणाली के अन्य रोग, दन्त रोग एवं सहायक संरचना, पाचक दोष, वायुदोष, आँत का फोडा, आँत रूकावट एवं आँत उतरना, यकृतीय अवघटन, पिताशय में पथरी, एवं पिताशय में सूजन, पाचन प्रणाली के अन्य रोग, वृक कोशकीय प्रदाह, अन्य वृक्क रोग, धूत की किडनी, मूत्र प्रणाली की पथरी, शिशन ग्रंथिकीय वृद्धि, जनन मूत्र अंगों की दूसरी बीमारियाँ, छाती के रोग, गर्भावस्थनीय विषाक्त एवं जननोपरान्त के रोग, प्रसूति और बच्चा जन्म का रक्त

प्रभाव, कानूनी गर्भपात, अन्य अवर्गीय गर्भपात, बच्चा पैदा होते समय एवं बाद के समय की विषाक्ता, बच्चा पैदा होत समय विषक्ता एवं ससाध्यता, सामान्य प्रसूति, त्वचा एवं आंतस्थ ऊतकों की संक्रमण अवस्था, त्वचा के अन्य रोग, अस्थि सन्धि रोग, मेरूरज्जु केशरूकीय विकृति रोग, असन्धीय वात रोग, अस्थि प्रदाह, अस्थि आवरणीय प्रदाह, संधीय कठोरपन एवं स्थायी त्वचा एवं अस्थि पेशीय विकृति, स्नायु संस्थान के अन्य रोग, केशेरूकीय दुविज्जन, जन्मजात हदृय विकृतियाँ, दूसरी जन्मजात रक्त परिवहन सम्बंधी विकृतियाँ, तालुवीय एवं अधरीय कटन, सभी अन्य कोंगेनिटल अनोमेलिस, जन्म के समय चोट एवं कठिन प्रसूति, नला की स्थिति एवं डोरी, जवजात शिशु की रक्तीय बीमारी, वायु अल्पता एवं निर्वाातता, अन्य मातृत मृत्युता एवं पूर्व प्रसूति के अन्य कारण, स्थिर बुद्धि।

जीवाणुजनित वर्गीकरण :

इसके अन्तर्गत रोगाणुजनित रोगों के वर्गीकरण सम्मलित किये जाते हैं। विज्ञान में सैंकड़ों वर्ष पूर्व जब यह अनेक प्रयोगों के प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका कि दुर्घटनाओं के अलावा जितने भी प्रकार के रोग पाये जाते हैं, उनका कारण उस रोग से सम्बंधि रोगाणु होते हैं। इसलिए रोगाणुजनित वर्गीकरण अपने आप में अलग महत्व रखता है। इसके अर्न्गत रोगों का अर्न्तराष्ट्रीय वर्गीकरण तथा पार्क द्वारा दिया गया रोगों के समूह का वर्गीकरण आते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा ने 1984 में रोगों का अर्न्तराष्ट्रीय वर्गीकरण प्रस्तुत किया था, जिसमें 156 प्रकार की बिमारियों का उल्लेख सम्मलित है। इसे विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट में रोगों का अर्न्तराष्ट्रीय वर्गीकरण दर्शाया गया है।

सन् 1995 में के. मार्क ने अपनी पुस्तक 'प्रिवेन्टिव एण्ड सोशियल मेडिसिन' के अन्तर्गत मानव रोगों का जनपादिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया था। यह एक प्रकार के रोगणुजनित वर्गीकरण है। इस वर्गीकरण में पार्क ने समस्त अन्र्तराष्ट्रीय वर्गीकरण के रोगों को दो बड़ो भागों में विभक्त किया है– (अ) संचारी रोग और (ब) असंचारी रोग। पार्क ने असंचारी रोगों को पुनः विभक्त नहीं किया परन्तु संचारी रोगों को 5 समूहों में विभक्त किया, वह निम्न प्रकार से हैंः 1. स्वांस सम्बंधरी रोगों का समूह 2. आन्त्र सम्बंधी रोगों का समूह 3. अकशेरूकी जन्तुजनित रोगों का समूह 4. कशेरूकी जन्तुजनित रोगों का समूह तथा 5. धरातलीय संक्रमण रोगों का समूह। इस प्रकार से पार्क ने समस्त रोग जो पृथ्वी पर पाये जाते हैं, उनको ऊपर वर्णित समूहों के अनुसार विभाजित किया है।

पार्क के अनुसार रोगों का वर्गीकरण :

पार्क ने रोगों का वर्गीकरण कर रोगों को दो भागों में विभाजित किया हैः

1 असंचारी रोगः असंचारी रोग वे रोग होते हैं, जो प्राणि से प्राणि में नहीं फैलते। जैसे मधुमेह, हदृय एवं रक्तसंचार, कैंसर, चोट, दुर्घटना आदि। सामान्य रूप से रोगों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। जैसे वातावरणीय रोग एवं भोजन की कमी से उत्पन्न रोग।

2 संचारी रोगः विरोना के फ्रेकस्टोरियस (1546) ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक में संचारी रोग का कारण कोन्टाजियम वाइवम को माना था। जब संक्रामक रोग एक से दूसरे व्यक्ति में फैलने वाले होते हैं तो उन्हें संचारी रोग कहते हैं। यह रोगी के प्रत्यक्ष सम्पर्क से रोगवाहक व्यक्ति द्वारा, रोगवाहक कीट या कीटाणु द्वारा, दूषित

पदार्थ द्वारा, जल, दूध द्वारा फैलते हैं। यदि रोग विस्तृत क्षेत्र में कई लोगों में फैले तो उसे महामारी कहते हैं। जब वह सीमित क्षेत्र में फैलता है तो उसे स्थानीय रोग कहते हैं। जब रोग एकाधिक लोगों में फैलता है तो उसे विकीर्ण कहते हैं। जब विश्वभर में एक ही बीमारी एक ही समय में फैलती है तो उसे विश्वमारी कहते हैं। रोग के कीटाणु व्यक्ति के शरीर में प्रवेश होने के बाद कुछ समय तक वे उसके शरीर में छिपे रहते हैं तथा उनकी गुणन क्रिया होती रहती है। जब तक रोगी संक्रामक बना रहता है, तब तक संक्रामक रोगणुओं को प्रसारित करता रहता है। रोग लक्षणों का अन्त होना ही रोगी का रोग मुक्त होना है।

इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार जो रोग–जीवाणुओं से मानव शरीर में प्रवेश के कारण फैलते हैं, तथा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष संसर्ग द्वारा बड़ी शीध्रता से फैलते हैं, संचारी रोग कहलाते हैं। यह एक कमजोरी है, जिससे रोग के कीटाणु एक स्वस्थ मनुष्य के शरी में प्रविष्ट होते हैं। ये कीटाणु मनुष्य, जानवर, पेड़–पौधे एवं अन्य साधनों से प्राप्त हो सकत हैं। यही कीटाणु हमारे शरीर में नाम, त्वचा अथवा मुँह द्वारा प्रवेश करते हैं। पृथ्वी या पृथ्वी के आसपास ऐसे बहुत से कीटाणु हैं। जिन्हें हम साधारण आँखों से देख नहीं पाते। संसार के अधिकांश रोग प्रायः इन्हीं जीवाणुओं के कारण होते हैं। जैसे प्लेग, हैजा, चेचक, मलेरिया, क्षय रोग इत्यादि छूत के रोग हैं। कुछ कीटाणु मनुष्य के लिए उपयोगी भी हैं। जैसे दूध से दही, अंगूर से मद्य, गन्ने से रस का सिरका, आटे के खमीर से डबलरोटी या जलेबी आदि उपयोगी क्रियायें कीटाणुओं द्वारा होता है। साधारणतः ये कीटाणु परिणाम में 1/1000 होते हैं अर्थात् एक हजार कीटाणुओं को पास–पास बैठाया जाए तो एक सें.मी. स्थान घेरेंगे। यदि इन्हें तौला जाए तो एक

मिलीग्राम वनज में एक खरब कीटाणु होंगे। कुछ कीटाणु भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में भिन्न–भिन्न आकृति धारण कर लेते हैं। इनका सिकुड़कर एक मोटा कोष बन जाता है तथा इसी स्थिति में महीनों वर्षो तक पड़े रहते हैं। इनमें से कुछ चल एवं कुछ अचल होते हैं। इन्हें नष्ट करना अति कठिन है। इन कीटाणुओं में दो प्रकार विष होते हैं। एक ऐसा जो उनके शरीर के भीतर होता है और उनके मरने पर शरीर के बाहर मनुष्य को हाँनि पहुँचाता है। दूसरा जो उनके शरीर से बहार ही रहता है। इन कीटाणुओं से फोड़े, फुन्सी, चेचक, खसरा, मस्तिष्क ज्वर, निमोनिया, पेचिश, कोढ, सूजाक, क्षय, नेत्र रोग, पीला ज्वर, मोतीझरा, जलांतक, मलेरिया, विषरोग आदि उत्पन्न होते हैं। सक्ष्मदर्शी जीव मानव शरीर में भेजन एवं जल के माध्यम से शरीर में प्रविष्ट होते हैं। सूक्ष्म जीव चार प्रकार के होते हैं।

अतिसूक्ष्म प्राणीः यह एक कोशिकीय प्राणी हैं, जो जल एवं कीचड जैसे स्थानों में रहता है। एक ग्राम मिट्टी में इनकी संख्या दस हजार से एक लाख तक हो सकती है। ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक गमन कर सकते हैं।

सूक्ष्म पौधेः इन्हें वनस्पति शास्त्र में माईक्रोफाईट कहते हैं। ये पौधे बिना जड़ तथा तना, पक्षियों वाले पौधे होते हैं। इन्हें फंफूदी कहते हैं। ये एक कोशिकीय या बहुकोशिकीय होते हैं। फंफूदी रोग उत्पन्न करती हैं जैसे दाद।

बैटरीरियाः यह प्राणी और वनस्पति दोनों ही वर्गो में आता है। बैक्टीरिया एक कोशिकीय होते हैं। इनमें एल्गी प्रमुख है। एक ग्राम मिट्टी में इनकी संख्या इस करोड़ तक हो सकती है। ये वायु में व्याप्त रहते हैं, जो भोजन, मांस, मछली, अंडे, बासी भोजन, कटाफटा फल आदि नाईट्रोजन युक्त पदार्थ होते हैं। अतः शीध्र प्रवेश कर जाते हैं तथा भोज्य पदार्थ को विषाक्त बना देते हैं। शक्करयुक्त भोजन

में शीध्र नहीं पनप पाते, इसलिए भोजन संरक्षण हेतु भोजन में नमक मसाले तथा शक्कर मिलाया जाता है। भोजन में दुर्गन्ध एवं स्वाद का बदल जाना बैक्टीरिया के कारण होता है। ये जीव शरीर में जाकर प्रतिरोधिनी शक्ति को कम कर देते हैं। तथा इनके रोगों को उत्पन्न करते हैं। बैक्टीरिया जड़ एवं चेतन प्राणियों पर आक्रमण कर परीश्रमी बने रहते हैं।

वायरसः ये अतिसूक्ष्म कणों के रुप में पाये जाते हैं। इनका वास्तविक रुप अज्ञात है। सूक्ष्मता के कारण ये फिल्टर पेपर के छिद्रों से निस्पंदित हो जाते हैं। समस्त वायरस रागोत्पादक होते हैं तथा रोग उत्पत्ति काल जीवाणुओं की अपेक्षा लज्बा होता है। शरीर में रोग कीटाणु यदि एक बार पहुँच जाये तो वे बड़ी तेजी से बढ़ते हैं, क्योंकि वहॉ उन्हें मन पसन्द गर्मी एवं भोजन मिलता है। शरीर में अपनी वंश वृद्धि के साथ जहर बनाते हैं और रक्त के साथ–साथ विष सहित सारे शरीर में फैल जाते हैं। हमारे शरीर में इन विषैले कीटाणुओं के विरूद्ध युद्ध करने की प्राकृतिक शक्ति ळै। इन कीटाणुओं के शरीर में पहुँचते ही शरीर जन्तुओं और इनमें युद्ध छिड़ जाता है। शरीर में जो श्वेतगुण है, इन जन्तुओं को मारकर खा जाते हैं। ये रक्त के तरल तत्व में तैरते रहते है यदि श्वेताणु जीत गये तो शरीर निरोग अन्यथा रोगी हो जाता है।

पारिस्थितिकी वर्गीकरणः

इस वर्गीकरण के अर्न्तगत दो प्रकार के वर्गीकरण आते हैं, उनमें अन्स्टीट्यूशनल वर्गीकरण (मास्को) तथा 'मे' द्वारा प्रस्तुत किया गया पारिस्थितिकी वर्गीकरण आता है। सन् 1974 में मास्को में स्थापित पोस्ट ग्रेज्युएट मैडिकल कॉलेज के एपीडियोमोलोजी विभाग ने प्रमुख रोगों का वर्गीकरण 'रोगी में रोगणु की स्थिति'

के आधार पर रोगों का वर्गीकरण किया, जिसमें उन्होंने समस्त बिमारियों के रोगों को तीन समूहों में विभाजित किया है—पहला समूह भोजन में वांछित तत्वों की कमी के आधार पर जो रोग होते हैं उनका बनाया गया। दूसरा समूह संचारी रोगों को रखा गया है और तीसरा समूह असंचारी रोगों का रहा। इस प्रकार से सेन्टर अन्स्टीट्यूट ऑफ पोस्ट ग्रेज्युएट मैडिकल कॉलेज, मास्को द्वारा प्रतिपादित किया गया।

पारिस्थितिकी वर्गीकरण सही मायने में देखा जाये तो जे.एम. में ने 1958 में अपनी पुस्तक 'मानव रोगों की पारिस्थितिकी' के अन्तर्गत किया। इस वर्गीकरण में 'में' ने रोगों के वर्गीकरण में पारिस्थितिकी एवं भौगोलिक तत्वों का आधार लिया। वास्तव में यह एक सही मायने में चिकित्सा भूगोलवेत्ताओं के लिए एक आदर्श वर्गीकरण कहलाता है क्योंकि वायु, जल इत्यादि तत्वों का आधार लेकर रोगों का वर्गीकरण करना अपने आप में चिकित्सा भूगोल विज्ञान में एक क्रांतिकारी कदम रहा है। 'मे' ने समस्त मानव रोगों को चार समहों में विभाजित किया— 1. जलजनित रोगों का समूह 2. वायुजनित रोगों का समूह 3. जीव—जन्तु जनित रोगों का समूह और 4. पोषण सम्बंधी रोगों का समूह। 'मे' के इस वर्गीकरण में पहला समूह जो जलजनित रोगों का है। इसके अन्तर्गत हमारे शोध विषय जो संक्रमी यकृत शोथ रोग का है। इस समूह के अन्तर्गत आते हैं। राजस्थान में जितने रोग पाये जाते हैं, उनमें अधिकांशतः जलजनित रोग हैं जो 'मे' द्वारा वर्गीकृत रोगों के पहले समूह में आते हैं।

'मे' वास्तव में एक अपने समय के महान चिकित्सा भूगोलवेत्ता रहे थे, उन्होंने शुद्ध भोगोलिक तत्वों के आधार पर विश्व में 'रोगों का पारिस्थितिकी

वर्गीकरण' 1958 में दिया था। यह एक शुद्ध तथा पहला रोगों का वर्गीकरण था तथा 1958 में यह पहला प्रयास था, जिसमें किसी चिकित्सा भूगोलवेत्ता तत्वों को आधार मानकर रोगों का पारिस्थितिक वर्गीकरण दिया गया। इससे पूर्व रोगों के वर्गीकरण जैसे कि विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा रोगों का वर्गीकरण किया गया, मास्को की मैडिकल कॉलेज द्वारा भी रोगों का वर्गीकरण दिया गया तथा पार्क द्वारा भी रोगों का वर्गीकरण दिया गया, परन्तु इन सभी ने अपने वर्गीकरण का आधार भौगोलिक तत्वों को नहीं रखा। दूसरी बात यह और भी थी कि यह सभी वर्गीकरण मैडिकल डॉक्टर्स द्वारा किये गये थे। 'में' का वर्गीकरण अपने आप में अलग इसलिए माना जाता है कि एक तो यह स्वयं भूगोलवेत्ता था तथा दूसरी बात यह रही कि उसने पर्यावरणीय तत्वों तथा भौगोलिक कारकों को आधार बनाया और रोगों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। 'में' ने समस्त प्रकार के रोगों को चार समूहों में विभाजित किया। पहला समूह वायुजनित रोगों का। दूसरा समूह जलजनित रोगों का, तीसरा समुह विक्टोरियल जनित रोग तथा चौथा समूह पोषण सम्बंधी बिमारियों का था। 'मे' ने यह बताया कि वायु तथा जल में भौगोलिक एवं जलवायु तत्व है तथा इनसे उत्पन्न होने वाली वायुजनित व जलजनित बिमारियाँ कहलाती हैं। यह माना जाता है कि विश्व में बिमारियाँ एक तिहाई जल से सम्बन्धित हैं। उदाहरण के तौर पर दस्त तथा पेचिस, डायरिया, डीहाइड्रैशन, हैजा, वाइरल हैपेटाइटिस, टायफाइड, मलेरिया इत्यादि, अतः जिस क्षेत्र में पेयजल की आपूर्ति शुद्ध नहीं होती है, उन जल स्त्रोतों में जल की भौतिक तथा रासायनिक प्रकृति को पीने वाले जल के पात्रों का रख रखाव इत्यादि, जलजनित रोगियों की कम या ज्यादा संख्या को निर्धारित करते हैं। यहाँ तक कि यदि जल में ज्लोराइड की अधिकता है तो वह ज्लोरोसिस सम्बंधी रोग को उत्पन्न करती है, जो मानव में स्थित अस्थियाँ तथा

दाँतों में कष्टदायक रोगों को पैदा करती है। राजस्थान में इस रोग से लगभग 18 जिले कुप्रभावित हैं

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल एन.एल.(1997) : भारतीय कृषि का अर्थतंत्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
2. अली मोहम्मद (1990) : कृषि उत्पादकता के स्तर में प्रादेशिक असंतुलन
3. एस्टोन, जे. और एस. जे. रोगर्स(1997) : इकोनोमिक चेन्ज एण्ड एग्रीकल्चर, एडीनवर्ग – ओलिवर एण्ड बोयड
4. बघेल, महिपाल सिंह व रामोतार पोरवाल(1999) : आधुनिक कृषि विज्ञान, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर
5. भरारा, एल.पी. एक्सेट्रा आल(1999) : समसोसियो–एग्रीकल्चर चैन्जेज एज ए रीजल्ट ऑफ इन्ट रोडम्स ऑफ इरिगेशन ए डेजर्ट रीजन एलालस ऑफ एरिड जान टवसण 13 पृ. 1.10
6. बर्कहिल, पी.सी .(1997) : ''एग्रीकल्चर प्रोब्लमस ऑफ इंडिया'' विकास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली
7. चौहान, टी.एस. (1987) : एग्रीकल्चर ज्योग्राफी, ए स्टैडी ऑफ राजस्थान, स्टेट एकेडमिक पब्लिशर्स, जयपुर
8. चौहान, एस.पी. (1987) : ''कृषि भूगोल राजस्थान राज्य का अध्ययन''

9. चटर्जी, एस.पी. (1994) : हावड़ा जिले का कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण

10. गुर्जर, आर. के.(1997) : इरीगेशन फोर एग्रीकल्चर मार्डनाईजेशन, साईन्टिफिक पब्लिशर्स, जोधपुर

11. गहलोत, जे. एस. (1994) : राजस्थान का सामाजिक जीवन, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर

12. गौड़ वन्दना(1996) : एग्रीकल्चर प्राईस पॉलिसी इन इंडिया, राका प्रकाशन, इलाहाबाद

13. गुप्ता, पी.एल. (1990) : जयपुर जिलें के पूर्वी भाग में कृषि का आधुनिकीकरण एवं विकास, एम.फिल.थिसिस राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

14. हुसैन, माजिद(1996) : सिस्टेमेटिक एग्रीकल्चर ज्योग्राफी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली